Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्यः सामाजिक एवं साहित्यिक सरोकार

Dr. Rajendra Singh*

Associate Professor, Department of Hindi, Govt. Arts College, Sikar

सारांश - ***साहित्यकार अपने युग परिवेश से प्रभावित होता है तथा समकालीन परिस्थितियां उस परिवेश को प्रभावित करती हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में तत्कालीन घटनाओं व विचारधाराओं के आंतरिक एवं बाह्य दबाओं के प्रभाववश कुछ विषिष्ट प्रवृतियां भी स्वाभाविक रूप से उभरकर आयी है। इन कविताओं में समकालीन परिवेश अपनी वास्तविकता के साथ प्रतिबिंबित हुआ है। कवियों ने समाज के बदलते मानवीय चेहरे को न केवल यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति दी है अपितु आज के भूमण्डलीकरण के कारण मनुष्य की बदलती जरूरतें, भूलते मानवीय मूल्य, समाज में व्याप्त विसंगतियों को भी चित्रित किया है। वर्तमान राजनीतिक सत्ता में फैले भ्रष्टाचार एवं दायित्वहीनता जैसी अनेक वृत्तियों को अपनी कविताओं का कथ्य बनाया है।***

उद्देश्य:

1. ***स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य की अन्तर्निहित चेतना और उसके सरोकारों पर प्रकाश डालना।***
2. ***समकालीन परिदृष्य में हाषिये के वर्गों को रेखांकित कर केन्द्र में लाने का प्रयास करना।***
3. ***समकालीन समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में हो रहे संघर्ष तथा परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को प्रकाश में लाना।***
4. ***स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में चित्रित जिन्दगी के यथार्थ को इंगित करना।***

मुख्य शब्दः समकालीन, सरोकार, समाज और परिवेश, प्रतिबद्ध, ग्लोबल विलेज, संकल्पना, मानवीयता, लोकतांत्रिक जीवन पद्धति, सामाजिक उत्तरदायित्व, संवेदना।

----------X----------

परिचय

साहित्य का सरोकार समाज और समकालीन यथार्थ से होता है। रचनाकार अपने युग परिवेश से प्रभावित होता है तथा समकालीन परिस्थितियां उस परिवेश को प्रभावित करती हैं। समकालीनता में एक ओर तो वर्तमान के अंश के साथ-साथ अतीत की निरन्तरता रहती है दूसरी ओर किसी भी समय उसमें एक से अधिक प्रवृतियाँ उलझी हुई चलती हैं क्योंकि समाज का निर्माण भी अनेकानेक शक्तियों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया से होता है। समाज और परिवेश व्यक्ति के चिंतन और जीवन मूल्यों से जुड़ा होता है। कवि उस परिवेश की स्थितियों व गतिविधियों की अनदेखी नहीं कर सकता है। रचनाकार अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से उत्पन्न भाव, विचार को सूक्ष्मता से अनुभूत करता है और उसे रचना में अपनी दृष्टि और अनुभूति के साथ उभारता है तथा उन्हें एक नयी दिषा देता है। गुलाब राय के अनुसार "कवि की बनाई हुई सामाजिक भावों की आदर्ष मूर्ति समाज की उन्नायिका बन जाती है। इस प्रकार कवि या लेखकगण समाज के उन्नायक और इतिहास के विधायक होते हैं।1

प्रो0 मैनेजर पाण्डेय लिखते है कि " साहित्य रचना एक सामाजिक कर्म है औा कृति एक सामाजिक उत्पादन, लेकिन

www.ignited.in

साहित्य की रचना व्यक्ति करता है, इसलिए समाज से साहित्य के सम्बन्ध को समझने के लिए समाज से रचनाकार व्यक्ति के ठोस ऐतिहासिक सम्बन्ध की समझ आवष्यक है।"2 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में तत्कालीन घटनाओं व विचारधाराओं के आन्तरिक और बाह्य दबाओं तथा प्रभावों के कारण कुछ विशिष्ट प्रवृतियां स्वाभाविक रूप से सामने आई क्योंकि हरेक रचनाकार को व्यक्ति, समाज व युग के प्रति प्रतिबद्ध होना पड़ता है। श्रेष्ठ साहित्य अपने समय में अन्तर्विरोधों से वैचारिक स्तर पर संघर्ष करते हुए अपनी मानववादी चेतना द्वारा उसका पुनर्निर्माण करता है। विशेषतः "कवि-सूक्ष्म, नाजुक संवेदना तंत्र से सज्ज मानव में यदि उसका युग संवेदित नहीं होता तो वह निरर्थक है।"3 रचनाकार समाज के सुख-दुःख का सहभागी होता है। वह अपनी रचना में तात्कालिक समाज को न केवल प्रतिबिम्बित करता है। वरण् उसके अच्छे-बुरे सभी पक्षों की समालोचना भी करता है। बालकृष्ण राव इस संबंध में लिखते है - "कविता का युग के जीवन से सीधा संबंध है। युग जीवन को कविता की अपेक्षा रहती है। उसकी सम्पूर्णता और सार्थकता के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक परिवेश से और अपनी परम्परागत, मानवाश्रित स्थूल और सूक्ष्म, सामाजिक सम्पति से अपने जीवन के लिए आवश्यक एवं वांछित दाय पा सके और ले सके और उसका समुचित उपयोग कर सके, वैसे ही यह आवश्यक है कि वह अपनी सृजन-शक्ति के सशक्त उत्कर्ष को अपनी कला में अभिव्यक्ति दे सके। युग की किन्हीं असाधारण इकाइयों के माध्यम से यह उत्कर्ष कविता के रूप में अवतरित होता है। ये इकाइयाँ, दूसरे शब्दों में युग के कवि, जहां एक ओर असाधारण हैं, वहां दूसरी ओर वे युग के मानव समाज की इकाइयां भी हैं, समाज से असम्बद्ध, आकाश से उतरे देवता नहीं।"4 विगत काल में भारत ने राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में इतिहास और परम्पराएं को आत्मसात् करते हुए मानवीयता, समानता, स्वतंत्रता, सहिष्णुता, सत्यं शिवं सुन्दरम्, धर्म निरपेक्षता, लोकतांत्रिक जीवन पद्धति जैसे मानव जीवन-मूल्य अर्जित किए थे। जिनके मूल में मनुष्यता का भाव था। आज इन परम्परागत मूल्यों में मनुष्य को गौण मानकर विकसित देशों की नकल करते हुए भौतिकता की अंधी दौड़ में हम सम्मिलित हो गए हैं। अंधाधुध विकास के इस प्रयास में जीवन के केन्द्र में अर्थ मुख्य हो गया है जिससे मूल्य हीनता के साथ अमानवीय प्रतियोगिता व प्रतिस्पर्धा का जन्म हुआ है। यद्यपि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में भारत ने आशातीत प्रगति की है पर प्रौद्योगिकी के साथ-साथ भोगवादी संस्कृति का उदय भी हुआ है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण मानव दिन-प्रतिदिन संवेदना-शून्य होकर एक निर्जीव वस्तु के रूप में तब्दील हो गया है। मनुष्य के लिए मनुष्यता जैसी संवेदनात्मक क्रियाएं अपना अर्थ खो चुकी है। केदारनाथ सिह की कविता 'फर्क नहीं पड़ता' की पंक्तियां यहां दृष्टव्य है:-

"पर सच तो यह है कि यहाँ

या कहीं थी फर्क नहीं पड़ता

तुमने जहां लिखा है,

प्यार वहां लिख दो सड़क

फर्क नहीं पड़ता

मेरे युग का मुहावरा है

फर्क नहीं पड़ता।।"[5]

संकुचित मनोवृत्ति, स्वार्थपरता, छल छद्म से भरे जीवन को भारत भूषण अग्रवाल इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

इस महानगर में जहां भी जाता हूं

कुर्सी पर एक सांप को

कुण्डली मारे बैठा पाता हूं

पार्कों की घास पर इन्हें

लहराते देखता हूं

दफ्तरों और रेस्तराओं में

इनकी फुफकारें उठती हैं।[6]

आज मनुष्य और मानवता की पहचान का संकट है। आज का व्यक्ति अपना चेहरा खोकर बे चेहरा हो गया है। धूमिल के ये शब्द आज भी समीचीन हैं:-

"हाँ, हो सके तो बगल से गुजरते हुए, आदमी से कहो।

लो यह तुम्हारा चेहरा,

यह जुलूस में पीछे गिर पड़ा था।।"[6]

कुँवर नारायण ने शोषणपरक व्यवस्था और समकालीन भ्रष्ट शासन प्रणाली पर करारा व्यंग्य करते हुए 'पहला-सवाल' नामक कविता में लिखते हैं-

सुबह रात भर के जागे लोग थककर

www.ignited.in

सड़कों फुटपाथों पर सोये पड़े थे।

कैसी विडम्बना है कि जब वे जागे

उन पर गलत जगह, गलत वक्त सोने का इल्जाम लगाया गया

और जनता की सुविधा के लिए

सरकारी रास्तों को साफ कराया गया

अब सोने और जागने का पूरा संदर्भ बदल चुका था-

दीवारें बदल चुकी थी

इश्तहार बदल चुके थे।[8]

कुँवर नारायण ने 'आत्मजयी' में नचिकेता के माध्यम से वर्तमान शासन व्यवस्था में शासक वर्ग को कत्तव्यबोध एवं दायित्वों की महत्वों ओर इंगित करते हैं-

तुम भी एक प्राणी हो

सबकी तरह समय के बने

जिसे सिंहासन एक भूमिका देता है,

मुकुट एक शीर्षक,

सेना एक कत्तव्य,

स्वरक्षा एक धर्म,

सभासद एक दायित्व ..... ।[9]

कवि उदयभानु हंस ने मानवतावादी स्वर मुखरित करते हुए सत्ता की भूख केा भेड़िया भूख कहते हुए व्यंग्य करते हैं-

अब कभी न जंगल के हिंसक हैवानों से डर लगता है,

जितना मुझको अपने युग के इंसानों से डर लगता है।

मैं सदा अमृत के धोखे में पी बैठा हूँ विष के प्याले,

अत्यन्त भयानक होते हैं भोली भाली सूरत वाले।

मैं घोर शत्रुओं की भारी चोटों से खौफ नहीं खाता,

मुझको तो मित्रों की हलकी मुसकानों से डर लगता है।[10]

आज विश्व सिमटता जा रहा है। एक ओर 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना की जा रही है तो दूसरी ओर मानव और मानवीयता सिमट रही है। मनुष्य मूल्य, नैतिकता, परम्परा, सांस्कृतिक संदर्भ इत्यादि से कटता जा रहा है। नित नई समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। प्रगति, योजना और विकास का लाभ चंद लोग उठा रहे हैं। देश के आम आदमी का जीवनयापन दुर्भर होता जा रहा है। विकास केवल कागजी आंकड़ों तक सीमित रह गया है। चारों ओर आंतक व असुरक्षा का भय व्याप्त हो रहा है। राजनीति में 'नीति' पूर्णतः गायब हो चली है। अब राजनीति भ्रष्टाचार का पर्याय बनती जा रही है। इसके नाम से ही लोग घृणा से भर जाते हैं :-

"नेता का अब नाम नहीं लें

अंधेपन से कान नहीं लें

हवा देश की बदल गयी है

चाँद और सूरज, ये भी अब

छिपकर नोट जमा करते है।।"[11]

जनतंत्र शब्द मजाक बन गया है। कवि धूमिल जनतंत्र पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं:-

"दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र

एक ऐसा तमाशा है

जिसकी जान

मदारी की भाषा है।।"[12]

बाजारवाद के कारण स्वार्थ, कुटिलता, आशंका, अविश्वास का माहौल है। लगातार घट रही अमानवीय घटनाएं आज सूचना मात्र बनकर रह जाती हैं। इन विकट परिस्थितियों में साहित्यकार का धर्म व्याप्त मानसिक जड़ता को तोड़कर मानवीय संवेदना को जागृत करने का है। चंद्रकांता देवताले ने अपनी कविता 'थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे' में समाज के दो वर्गों के बच्चों की जीवन स्थिति का एक साथ दृष्य प्रस्तुत कर एक भयावह स्थिति को अंकित करते हैं-

थोड़े से बच्चों के लिए

एक बगीचा है

उनके पाँव दूब पर दौड़ रहे हैं

असंख्य बच्चों के लिए

कीचड़-धूल और गंदगी से पटी

गालियां हैं जिनमें वे

अपना भविष्य बीन रहे हैं।[13]

अभिमन्यु अनत तत्कालीन समाज में दोयम दर्जे का व्यवहार सहने वाले दलितों के कर्म को कवि कर्म से जोड़ते हुए कहते हैं-

तुम जूते बनाते हो, ताकि.....

कंकड़, कीचड़

आदमी के पाँव को खाये नहीं

मैं भी मेरे दोस्त

कविता रचता हूँ ताकि

आदमी आदमी को खाये नहीं

मैं तुम्हारी ही जाति का हूँ

मैं भी चमार हूँ मेरे दोस्त।[14]

साहित्य के बारे में डाॅ. रामकुमार वर्मा कहते हैं कि 'जीवन से अलग हटी हुई कविता साहित्य की सबसे बड़ी निर्लज्जता है।' साहित्यशास्त्र में 'कला, कला के लिए' सिद्धान्त का प्रादुर्भाव इसी कोटि के साहित्य और समाज के रिश्तों को लेकर हुआ है। इस प्रकार के साहित्य में जीवन के संकटों पर विचार नहीं किया जाता। जीवन्त साहित्य में भाव, विचार, संवेदना, सपना, कल्पना इत्यादि कथ्यगत दृष्टि मुख्य होती है न कि रूपवादी दृष्टि। मनुष्य की प्रकृति है कि वह प्रायः अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट रहता है और अधिक से अधिक विकास और बदलाव की आकांक्षा रखता है। साहित्यकार परिवर्तन की इस प्रक्रिया में सबसे आगे चलता है तभी वह यथास्थिति को बदलकर नये परिवर्तन का मसीहा बनता है और लोक हित के लिए सदैव तत्पर रहता है। वह सम्पूर्ण समाज के सपनों, आकांक्षाओं को भाषा के माध्यम से मूर्त रूप देता है तथा समाज को बदलने के लिए प्रेरित करता है। अर्थात् समाज को विकल्प प्रदान करता है। सत साहित्य लोकमंगल के साथ-साथ जन-जागरण व आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं-

मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए

उसमें उचित उपदेश का मर्म होना चाहिए।

साहित्य में उपदेश नहीं वरण 'उपदेश' का मर्म होना चाहिए। जो कुछ भी वांछित है उसे स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए। साहित्य एवं समाज के संबंध को गहराई से समझा जाए तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि संवेदना ही दोनों को जोड़ती है। सत्येन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं- "जिस साहित्य में मानवीय संवेदना नहीं होती उस साहित्य की उम्र बहुत कम होती है। क्योंकि साहित्य संवेदनाओं पर आधारित होता है। संवेदना रहित साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।15 लेखन का कार्य सामाजिक उत्तरदायित्व का कार्य है। आज के बदलते परिवेश में ईमानदारी तथा निष्ठापूर्वक रचनाकर्म निभाने वाले साहित्यकारों की संख्या बहुत कम रह गई है। कुछ रचनाकार समकालीन कुत्सित राजनीति के शिकार होकर अपने गौरवशाली रचनाक्रम से विमुख हो गए हैं तो कुछ सत्ता के प्रभाव में आकर दल विशेश के प्रति प्रतिबद्धता निभा रहे हैं। कतिपय लेखक सामाजिक सरोकारों को अनदेखा कर मीडिया से अपना नाता जोड़ सुविधाभोगी रास्ते पर चल पड़े है। उनकी लेखनी की धार में अपेक्षित पैनापन नजर नहीं आता। स्वतंत्रता के लम्बे समय बाद भी देश में निरक्षरता की समस्या बनी हुई है। अशिक्षा के चलते लोगों के पास सम्यक जीवन दृष्टि का अभाव है। परिणामतः देश में आज भी जाति धर्म, वर्ण व लिंग भेद की सोच वर्तमान है। जगदीश गुप्त का 'शम्बूक' समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, वर्ण भेद, जातिगत भेदभाव आदि कुत्सित भावनाओं का सशक्त रूप में चित्रण करता है। शम्बूक राम से जातिगत समस्या पर प्रश्न करते हैं कि जातिगत विषमता का अस्तित्व समाज में क्यों हैं ? क्यों पृथ्वी पुत्र होने पर भी यह वैषम्य दिखाई देता हैः-

"सभी पृथ्वी पुत्र है तब जन्म से

क्यों भेद माना जाय

जन्मजात समानता के तथ्य पर

क्यों भेद माना जाय

जन्मना जायते शूद्रः

क्यों नहीं सबके लिए यह सत्य

और 'संस्कारात ही द्विज उच्चते'

www.ignited.in

की घोषणा का क्यों न हो सातव्य ?''[16]

राजनीतिक क्षुद्रता, धर्मान्धता, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता, प्रांतीयता, आंतकवाद जैसी चुनौतियों के परिवेश में ऐसे साहित्यकारों की आवश्यकता है जो राजनीति की स्वार्थ भावना, पदलोलुपता, षड़यन्त्रकारी, धूर्त प्रवृति का पर्दाफाश कर सामाजिक प्रतिबद्धता के दायित्व निर्वहन कर सके। समकालीन कविता के सशक्त कवि लीलाधर जगूड़ी को अब शहर सभ्यता और संस्कृति से परे आदमी की शक्ल में जानवर अधिक नजर आते हैं-

इस तरह मत भागो

कहीं कोई नौकरी पकड़ो

विनाश की बहुत बड़ी पहुच है

तुम इन्तजार करोगे एक दिन

आदमी जैसी शक्ल के लिए तरसोगे।[17]

आज विश्व में विकसित देशों की हित साधक तथा गरीब देशों दरिद्रता बढ़ाने वाली असमानतामूलक व्यवस्था पनप रही है। इस व्यवस्था में मानव श्रम और समता का कोई स्थान नहीं है। भारत की आधी से अधिक आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। ऐसे में मानवीय संवेदना और सहृदयता का तकाजा है कि रचनाकार इस सच्चाई को समझे और अपनी रचना में उद्घाटित करें। जनसाधारण को सम्बल प्रदान कर उनमें आशा और विश्वास का संचार करे। क्योंकि लोकतंत्र इतिहास पुरूषों या राजपुरूषों के बल पर नहीं टिका है वह जन साधारण की आकांक्षा का प्रतीक है। नरेश मेहता ने अपनी रचना 'प्रवाद पर्व' में आम आदमी को अपनी संवेदनाओं से जोड़ते हुए उसकी सोच को रेखांकित करते हुए कहा है -

''कैसे है ?

राज शक्ति पर प्रश्न चिह्न लगाना

विरोधी संकल्प कैसे हैं ?

क्या गरिमा

क्या चरित्र

क्या अधिकार

केवल राज्य

राजपुरूषों के ही होते हैं ?

अनाम साधारण जन के कुछ नहीं होते राम।''[18]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में समकालीन परिवेश अपनी वास्तविकता के साथ प्रतिबिंबित हुआ है। कवियों ने समाज के बदलते मानवीय चेहरे केा न केवल यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति दी है अपितु आज के भूमण्डलीकरण के कारण मनुष्य की बदलती जरूरतें, भूलते मानवीय मूल्य, समाज में व्याप्त विसंगतियों को भी चित्रित कर सामाजिक सरोकारों के सवालों को उकेरा है तथा वर्तमान राजनीतिक सत्ता में फैले भ्रष्टाचार दायित्वहीनता, सामाजिक समस्याओं इत्यादि को अपनी कविताओं का कथ्य बनाया है।

साहित्य के विचार तथा भाव का केन्द्र समाज ही है। रचनाकार का दायित्य है कि वह साहित्य व समाज के इस सिाहित्य और समाज के इस विविधतामय और परिवर्तनकारी रिष्ते को अपने सामाजिक चिन्तन से गतिषील बनाये रखे तथा अपनी साहित्यिक चेतना के माध्यम से समाज को नई दिषा दे। समाज में बहुत विषमताएं हैं और इन विषमताओं में भी बहुत सी प्रकृति प्रदत्त भी हैं वे तो रहेंगी। परन्तु व्यक्ति को अपने विकास के लिए समान अवसर इस समाज पर बड़ा प्रश्न है। इन विषमताओं के चलते अनेकानेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। साहित्यकार इन राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक विषमताओं पर प्रहार कर मानवता, समता और स्वाधीनता के आधार पर संसार को द्रष्टा एवं स्रष्टा बनकर नयी दिशा प्रदान करने के उत्तरदायित्व को वहन करना चाहिए।

सन्दर्भः-

1. गुलाब राय, काव्य के रूप, पृ.सं. 5
2. पाण्डेय, मैनेजर; साहित्य के समाजषास्त्र की भूमिका, प.13
3. " A poet is nothing if not sensitive to his environment."- A Hope for poetry; C.D. Lewis, Page 26.
4. कल्पना; अंक, जनवरी 1956
5. सं. परमानंद श्री वास्तव, प्रतिनिधि कविताएं, पृ.सं. 91
6. भरत भूषण अग्रवाल; एक उठा हुआ हाथ, पृ.सं. 21

7. धूमिल; संसद में सड़क तक, पृ.सं. 8

8. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृ.सं. 67

9. सं. यतीन्द्र मिश्र; कुँवर नारायणः संसार भाग-1, पृ.सं. 68

10. सं. रामसजन पाण्डेय; उदयभानु हँस रचनावली-1, सरगम, पृ.सं. 389

11. रामधारी सिंह 'दिनकर' ; रश्मिलोक, पृ.सं. 215

12. धूमिल; संसद से सड़क तक, पृ.सं. 115

13. वागर्थ, जुलाई 2008 पृ.सं. 42

14. अभिमन्यु अनत, समग्र कविताएँ, काव्य संग्रहः गुलमोहर खौल उठा, पृ.सं. 258

15. सत्येन्द्र प्रताप सिंह, हिंदी कथा साहित्य में अंतरलिंगी समाज, समसामयिक सृजन, जुलाई-दिसम्बर 2014, पृ.सं. 49

16. जगदीश गुप्त ; शम्बूक ; प्रतिपक्ष, पृ.सं. 44

17. लीलाधर जगूड़ी, नाटक जारी है, पृ.सं. 18

18. नरेश मेहता ; प्रवाद पर्व, पृ.सं. 30

Corresponding Author

Dr. Rajendra Singh*

Associate Professor, Department of Hindi, Govt. Arts College, Sikar

sigarraj@gmail.com